रामचरितमानस

सुन्दरकाण्ड

चौपाई :

*** अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयू हीन भए सब तबहीं॥ साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥1॥

भावार्थ:-

ऐसा कहकर विभीषणजी ज्यों ही चले, त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गए। (उनकी मृत्यु निश्चित हो गई)। (शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! साधु का अपमान तुरंत ही संपूर्ण कल्याण की हानि (नाश) कर देता है॥1॥

*** रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥ चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥2॥

भावार्थ:-

रावण ने जिस क्षण विभीषण को त्यागा, उसी क्षण वह अभागा वैभव (ऐश्वर्य) से हीन हो गया। विभीषणजी हर्षित होकर मन में अनेकों मनोरथ करते हुए श्री रघुनाथजी के पास चले॥2॥

*** देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥ जे पद परसि तरी रिषनारी। दंडक कानन पावनकारी॥3॥

भावार्थ:-

(वे सोचते जाते थे-) मैं जाकर भगवान् के कोमल और लाल वर्ण के सुंदर चरण कमलों के दर्शन करूँगा, जो सेवकों को सुख देने वाले हैं, जिन चरणों का स्पर्श पाकर ऋषि पत्नी अहल्या तर गईं और जो दंडकवन को पवित्र करने वाले हैं॥3॥

*** जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥ हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥4॥

भावार्थ:-

जिन चरणों को जानकीजी ने हृदय में धारण कर रखा है, जो कपटमृग के साथ पृथ्वी पर (उसे पकड़ने को) दौड़े थे और जो चरणकमल साक्षात् शिवजी के हृदय रूपी सरोवर में विराजते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा॥4॥

दोहा :

*** जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ। ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥42॥

भावार्थ:-

जिन चरणों की पादुकाओं में भरतजी ने अपना मन लगा रखा है, अहा! आज मैं उन्हीं चरणों को अभी जाकर इन नेत्रों से देखूँगा॥42॥

चौपाई :

*** ऐहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंदु एहिं पारा॥ कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥1॥

भावार्थ:-

इस प्रकार प्रेमसहित विचार करते हुए वे शीघ्र ही समुद्र के इस पार (जिधर श्री रामचंद्रजी की सेना थी) आ गए। वानरों ने विभीषण को आते देखा तो उन्होंने जाना कि शत्रु का कोई खास दूत है॥1॥

*** ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥ कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥2॥

भावार्थ:-

उन्हें (पहरे पर) ठहराकर वे सुग्रीव के पास आए और उनको सब समाचार कह सुनाए। सुग्रीव ने (श्री रामजी के पास जाकर) कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए, रावण का भाई (आप से) मिलने आया है॥2॥

*** कह प्रभु सखा बूझिए काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥ जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥3॥

भावार्थ:-

प्रभु श्री रामजी ने कहा- हे मित्र! तुम क्या समझते हो (तुम्हारी क्या राय है)? वानरराज सुग्रीव ने कहा- हे महाराज! सुनिए, राक्षसों की माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलने वाला (छली) न जाने किस कारण आया है॥3॥

*** भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥ सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥4॥

भावार्थ:-

(जान पड़ता है) यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है, इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रखा जाए। (श्री रामजी ने कहा-) हे मित्र! तुमने नीति तो अच्छी विचारी, परंतु मेरा प्रण तो है शरणागत के भय को हर लेना!॥4॥

*** सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥5॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए (और मन ही मन कहने लगे कि) भगवान् कैसे शरणागतवत्सल (शरण में आए हुए पर पिता की भाँति प्रेम करने वाले) हैं॥5॥

दोहा :

*** सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि। ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥43॥

भावार्थ:-

(श्री रामजी फिर बोले-) जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आए हुए का त्याग कर देते हैं, वे पामर (क्षुद्र) हैं, पापमय हैं, उन्हें देखने में भी हानि है (पाप लगता है)॥43॥

चौपाई :

*** कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥ सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥1॥

भावार्थ:-

जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या लगी हो, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं॥1॥

*** पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥ जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥2॥

भावार्थ:-

पापी का यह सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सुहाता। यदि वह (रावण का भाई) निश्चय ही दुष्ट हृदय का होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था?॥2॥

*** निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥ भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥3॥

भावार्थ:-

जो मनुष्य निर्मल मन का होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते। यदि उसे रावण ने भेद लेने को भेजा है, तब भी हे सुग्रीव! अपने को कुछ भी भय या हानि नहीं है॥3॥

*** जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते॥ जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥4॥

भावार्थ:-

क्योंकि हे सखे! जगत में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण क्षणभर में उन सबको मार सकते हैं और यदि वह भयभीत होकर मेरी शरण आया है तो मैं तो उसे प्राणों की तरह रखूँगा॥4॥

दोहा :

*** उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत। जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥44॥

भावार्थ:-

कृपा के धाम श्री रामजी ने हँसकर कहा- दोनों ही स्थितियों में उसे ले आओ। तब अंगद और हनुमान् सहित सुग्रीवजी 'कपालु श्री रामजी की जय हो' कहते हुए चले॥4॥

चौपाई :

*** सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥ दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥1॥

भावार्थ:-

विभीषणजी को आदर सहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले, जहाँ करुणा की खान श्री रघुनाथजी थे। नेत्रों को आनंद का दान देने वाले (अत्यंत सुखद) दोनों भाइयों को विभीषणजी ने दूर ही से देखा॥1॥

*** बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥ भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन॥2॥

भावार्थ:-

फिर शोभा के धाम श्री रामजी को देखकर वे पलक (मारना) रोककर ठिठककर (स्तब्ध होकर) एकटक देखते ही रह गए। भगवान् की विशाल भुजाएँ हैं लाल कमल के समान नेत्र हैं और शरणागत के भय का नाश करने वाला साँवला शरीर है॥2॥

*** सघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा॥ नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥3॥

भावार्थ:-

सिंह के से कंधे हैं, विशाल वक्षःस्थल (चौड़ी छाती) अत्यंत शोभा दे रहा है। असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करने वाला मुख है। भगवान् के स्वरूप को देखकर विभीषणजी के नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया और शरीर अत्यंत पुलकित हो गया। फिर मन में धीरज धरकर उन्होंने कोमल वचन कहे॥3॥

*** नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥ सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥4॥

भावार्थ:-

हे नाथ! मैं दशमुख रावण का भाई हूँ। हे देवताओं के रक्षक मेरा जन्म राक्षस कुल में हुआ है। मेरा तामसी शरीर है, स्वभाव से ही मुझे पाप प्रिय हैं, जैसे उल्लू को अंधकार पर सहज स्नेह होता है॥4॥

दोहा :

*** श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥45॥

भावार्थ:-

मैं कानों से आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव (जन्म-मरण) के भय का नाश करने वाले हैं। हे दुखियों के दुःख दूर करने वाले और शरणागत को सुख देने वाले श्री रघुवीर! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए॥45॥

चौपाई :

*** अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥ दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥1॥

भावार्थ:-

प्रभु ने उन्हें ऐसा कहकर दंडवत् करते देखा तो वे अत्यंत हर्षित होकर तुरंत उठे। विभीषणजी के दीन वचन सुनने पर प्रभु के मन को बहुत ही भाए। उन्होंने अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उनको हृदय से लगा लिया॥1॥

*** अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भय हारी॥ कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥2॥

भावार्थ:-

छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर श्री रामजी भक्तों के भय को हरने वाले वचन बोले- हे लंकेश! परिवार सहित अपनी कुशल कहो। तुम्हारा निवास बुरी जगह पर है॥2॥

*** खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥ मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥3॥

भावार्थ:-

दिन-रात दुष्टों की मंडली में बसते हो। (ऐसी दशा में) हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है? मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ। तुम अत्यंत नीतिनिपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती॥3॥

*** बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥ अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥4॥

भावार्थ:-

हे तात! नरक में रहना वरन् अच्छा है, परंतु विधाता दुष्ट का संग (कभी) न दे। (विभीषणजी ने कहा-) हे रघुनाथजी! अब आपके चरणों का दर्शन कर कुशल से हूँ, जो आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है॥4॥

दोहा :

*** तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम। जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥46॥

भावार्थ:-

तब तक जीव की कुशल नहीं और न स्वप्न में भी उसके मन को शांति है, जब तक वह शोक के घर काम (विषय-कामना) को छोड़कर श्री रामजी को नहीं भजता॥46॥

चौपाई :

*** तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥ जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥1॥

भावार्थ:-

लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभी तक हृदय में बसते हैं, जब तक कि धनुष-बाण और कमर में तरकस धारण किए हुए श्री रघुनाथजी हृदय में नहीं बसते॥1॥

*** ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥ तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥2॥

भावार्थ:-

ममता पूर्ण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देने वाली है। वह (ममता रूपी रात्रि) तभी तक जीव के मन में बसती है, जब तक प्रभु (आप) का प्रताप रूपी सूर्य उदय नहीं होता॥2॥

*** अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥ तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला॥3॥

भावार्थ:-

हे श्री रामजी! आपके चरणारविन्द के दर्शन कर अब मैं कुशल से हूँ, मेरे भारी भय मिट गए। हे कृपालु! आप जिस पर अनुकूल होते हैं, उसे तीनों प्रकार के भवशूल (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) नहीं व्यापते॥3॥

*** मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥ जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा॥4॥

भावार्थ:-

मैं अत्यंत नीच स्वभाव का राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया। जिनका रूप मुनियों के भी ध्यान में नहीं आता, उन प्रभु ने स्वयं हर्षित होकर मुझे हृदय से लगा लिया॥4॥

दोहा :

*** अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज। देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥47॥

भावार्थ:-

हे कृपा और सुख के पुंज श्री रामजी! मेरा अत्यंत असीम सौभाग्य है, जो मैंने ब्रह्मा और शिवजी के द्वारा सेवित युगल चरण कमलों को अपने नेत्रों से देखा॥47॥

चौपाई :

*** सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥ जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥1॥

भावार्थ:-

(श्री रामजी ने कहा-) हे सखा! सुनो, मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे काकभुशुण्डि, शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं। कोई मनुष्य (संपूर्ण) जड़-चेतन जगत् का द्रोही हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण तक कर आ जाए,॥1॥

*** तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥ जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥2॥

भावार्थ:-

और मद, मोह तथा नाना प्रकार के छल-कपट त्याग दे तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधु के समान कर देता हूँ। माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार॥2॥

*** सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥ समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥3॥

भावार्थ:-

इन सबके ममत्व रूपी तागों को बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बनाकर उसके द्वारा जो अपने मन को मेरे चरणों में बाँध देता है। (सारे सांसारिक संबंधों का केंद्र मुझे बना लेता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मन में हर्ष, शोक और भय नहीं है॥3॥

*** अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥ तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥4॥

भावार्थ:-

ऐसा सज्जन मेरे हृदय में कैसे बसता है, जैसे लोभी के हृदय में धन बसा करता है। तुम सरीखे संत ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसी के निहोरे से (कृतज्ञतावश) देह धारण नहीं करता॥4॥

दोहा :

*** सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम। ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥48॥

भावार्थ:-

जो सगुण (साकार) भगवान् के उपासक हैं, दूसरे के हित में लगे रहते हैं, नीति और नियमों में दृढ़ हैं और जिन्हें ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणों के समान हैं॥48॥

चौपाई :

*** सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥। राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा॥1॥

भावार्थ:-

हे लंकापति! सुनो, तुम्हारे अंदर उपर्युक्त सब गुण हैं। इससे तुम मुझे अत्यंत ही प्रिय हो। श्री रामजी के वचन सुनकर सब वानरों के समूह कहने लगे- कृपा के समूह श्री रामजी की जय हो॥1॥

*** सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥ पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥2॥

भावार्थ:-

प्रभु की वाणी सुनते हैं और उसे कानों के लिए अमृत जानकर विभीषणजी अघाते नहीं हैं। वे बार-बार श्री रामजी के चरण कमलों को पकड़ते हैं अपार प्रेम है, हृदय में समाता नहीं है॥2॥

*** सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥ उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥3॥

भावार्थ:-

(विभीषणजी ने कहा-) हे देव! हे चराचर जगत् के स्वामी! हे शरणागत के रक्षक! हे सबके हृदय के भीतर की जानने वाले! सुनिए, मेरे हृदय में पहले कुछ वासना थी। वह प्रभु के चरणों की प्रीति रूपी नदी में बह गई॥3॥

*** अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥ एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥4॥

भावार्थ:-

अब तो हे कृपालु! शिवजी के मन को सदैव प्रिय लगने वाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिए। 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रणधीर प्रभु श्री रामजी ने तुरंत ही समुद्र का जल माँगा॥4॥

*** जदपि सखा तव इच्छा नहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥ अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥5॥

भावार्थ:-

(और कहा-) हे सखा! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत् में मेरा दर्शन अमोघ है (वह निष्फल नहीं जाता)। ऐसा कहकर श्री रामजी ने उनको राजतिलक कर दिया। आकाश से पुष्पों की अपार वृष्टि हुई॥5॥

दोहा :

*** रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड। जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥49क॥

भावार्थ:-

श्री रामजी ने रावण की क्रोध रूपी अग्नि में, जो अपनी (विभीषण की) श्वास (वचन) रूपी पवन से प्रचंड हो रही थी, जलते हुए विभीषण को बचा लिया और उसे अखंड राज्य दिया॥49 (क)॥

*** जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ। सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥49ख॥

भावार्थ:-
शिवजी ने जो संपत्ति रावण को दसों सिरों की बलि देने पर दी थी, वही संपत्ति श्री रघुनाथजी ने विभीषण को बहुत सकुचते हुए दी॥9 (ख)॥
चौपाई :
*** अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥ निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥1॥
भावार्थ:-
ऐसे परम कृपालु प्रभु को छोड़कर जो मनुष्य दूसरे को भजते हैं वे बिना सींग-पूँछ के पशु हैं। अपना सेवक जानकर विभीषण को श्री रामजी ने अपना लिया। प्रभु का स्वभाव वानरकुल के मन को (बहुत) भाया॥1॥
*** पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी॥ बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥2॥
भावार्थ:-
फिर सब कुछ जानने वाले, सबके हृदय में बसने वाले, सर्वरूप (सब रूपों में प्रकट), सबसे रहित, उदासीन, कारण से (भक्तों पर कृपा करने के लिए) मनुष्य बने हुए तथा राक्षसों के कुल का नाश करने वाले श्री रामजी नीति की रक्षा करने वाले वचन बोले-॥2॥

समुद्र पार करने के लिए विचार, रावणदूत शुक का आना और लक्ष्मणजी के पत्र को लेकर लौटना

*** सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥ संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँति॥3॥
भावार्थ:-
हे वीर वानरराज सुग्रीव और लंकापति विभीषण! सुनो, इस गहरे समुद्र को किस प्रकार पार किया जाए? अनेक जाति के मगर, साँप और मछलियों से भरा हुआ यह अत्यंत अथाह समुद्र पार करने में सब प्रकार से कठिन है॥3॥
*** कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥ जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥4॥
भावार्थ:-
विभीषणजी ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए, यद्यपि आपका एक बाण ही करोड़ों समुद्रों को सोखने वाला है (सोख सकता है), तथापि नीति ऐसी कही गई है (उचित यह होगा) कि (पहले) जाकर

समुद्र से प्रार्थना की जाए॥4॥

दोहा :

*** प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि॥ बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥50॥

भावार्थ:-

हे प्रभु! समुद्र आपके कुल में बड़े (पूर्वज) हैं, वे विचारकर उपाय बतला देंगे। तब रीछ और वानरों की सारी सेना बिना ही परिश्रम के समुद्र के पार उतर जाएगी॥50॥

चौपाई :

*** सखा कही तुम्ह नीति उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई। मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥1॥

भावार्थ:-

(श्री रामजी ने कहा-) हे सखा! तुमने अच्छा उपाय बताया। यही किया जाए, यदि दैव सहायक हों। यह सलाह लक्ष्मणजी के मन को अच्छी नहीं लगी। श्री रामजी के वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया॥1॥

*** नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥ कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥2॥

भावार्थ:-

(लक्ष्मणजी ने कहा-) हे नाथ! दैव का कौन भरोसा! मन में क्रोध कीजिए (ले आइए) और समुद्र को सुखा डालिए। यह दैव तो कायर के मन का एक आधार (तसल्ली देने का उपाय) है। आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं॥2॥

*** सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥ अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥3॥

भावार्थ:-

यह सुनकर श्री रघुवीर हँसकर बोले- ऐसे ही करेंगे, मन में धीरज रखो। ऐसा कहकर छोटे भाई को समझाकर प्रभु श्री रघुनाथजी समुद्र के समीप गए॥3॥

*** प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥ जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए॥4॥

भावार्थ:-

उन्होंने पहले सिर नवाकर प्रणाम किया। फिर किनारे पर कुश बिछाकर बैठ गए। इधर ज्यों ही विभीषणजी प्रभु के पास आए थे, त्यों ही रावण ने उनके पीछे दूत भेजे थे॥51॥

दोहा :

*** सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह। प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह॥51॥

भावार्थ:-

कपट से वानर का शरीर धारण कर उन्होंने सब लीलाएँ देखीं। वे अपने हृदय में प्रभु के गुणों की और शरणागत पर उनके स्नेह की सराहना करने लगे॥51॥